पाकिस्तान का सफरनामा-२

स्तंभ/अनन्तर/जनसत्ता/२६ फरवरी, २००६

कराची में फैज

ओम थानवी

इमदाद काजी इस बात से पूरी तरह मुत्तफिक लगे कि भारत और पाकिस्तान के बीच अवाम में दुराव उतना नहीं है। समझ कहीं ठहरी हुई है तो उसकी बड़ी वजह पढ़ाई है। पाठ्य-पुस्तकों पर पर्दा पड़ा है और इतिहासकारों की आंखों पर रंगदार चश्मा चढ़ा है। हुक्मरान हैं कि बुझे मन से बस-ट्रेन तो चलाते हैं पर अखबार, पत्रिकाएं और टीवी चैनल इधर से उधर नहीं जाने देते। समझ बढ़े कैसे। दोनों तरफ एक पूरी पीढ़ी अंधेरे में बड़ी हुई है। अगली पीढ़ी की तालीम में भी क्या यही नाइंसाफी होगी?

मंसूर सईद अपनी अलमस्त फितरत में दिलचस्प, मगर अहम, जानकारी सामने लाते हैं। वे बोले, महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर में हुकूमत की थी और गुरु नानक की पैदाइश ननकाना साहब की है जो पाकिस्तान में है; मगर बच्चे यहां सरदार को देख कर चौंक जाया करते थे। उन्हें पता ही नहीं था इस कौम का। पढ़ाएं-बताएं, तब जानें!

इस पर मुझसे एक वाकया बयान किए बगैर रहा नहीं गया। इसे पूर्व विदेश राज्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने मुझे सुनाया था। पिछली दफा जनरल मुशर्रफ जब दिल्ली आए तब सिंह मेहमान राष्ट्रपति के साथ तैनात थे। जब दिग्विजय उन्हें राजघाट ले जा रहे थे, कार तीस जनवरी मार्ग से गुजरी। अपने जन्म के शहर को कुतूहल से निहारते मुशर्रफ ने राह का नामपट्ट देख कर पूछा, क्या यहां कैलेंडर की तारीखों पर भी सड़कों के नाम होते हैं? 'मिनिस्टर ऑन ड्यूटी' दिग्विजय ने उन्हें सहज भाव से बताया कि तीस जनवरी को यहां पर महात्मा गांधी को मार दिया गया था, इसलिए सड़क का नाम पड़ा। पल भर सोच कर जनरल मुशर्रफ ने पूछा: उनका (गांधीजी का) कत्ल गोली से हुआ था या चाकू से?

इस वाकये को सुन कर काजी साहब और मंसूर सईद ही नहीं वहां मौजूद हर कोई हैरान हुआ। मैंने कहा, ज्यादा हैरान न हों। भारत में भी बहुत-से लोगों को नहीं मालूम होगा कि जब जिन्ना साहब को, सेहत पूरी तरह बिगड़ जाने पर, पर्वतीय स्थल जियारत से कराची लाया गया तो उनकी एंबुलेंस फौजी हवाई अड्डे से शहर के बीच 'खराब' हो गई थी। कायदे आजम मुल्क के गवर्नर जनरल (राष्ट्रपति) थे। देर बाद कराची से दूसरी एंबुलेंस गई और उन्हें लाई तब तक वे मौत के बहुत करीब पहुंच चुके थे। मैंने कहा, हमारे यहां इसकी बात भी नहीं होती है कि आपके पहले वजीरे आजम लियाकत अली का कत्ल क्यों और कैसे हुआ था।

काजी बोले, आम आदमी के मालूमात की बात और है; एक मुल्क के प्रेसीडेंट को खबर होनी चाहिए कि महात्मा गांधी जैसी शख्सियत कैसे शहीद हुई थी।

काजी की इसी साफगोई का मैं कायल हुआ। उनसे जब-तब अब भी फोन पर बात होती है। मौलाना आजाद की 'इंडिया विन्स फ्रीडम' उन्होंने पढ़ी है। मैंने उन्हें डॉक्टर लोहिया की किताब 'गिल्टी मेन ऑफ इंडियाज पार्टिशन' (भारत विभाजन के गुनहगार) भिजवाने का वादा किया है जो मौलाना की किताब पर तफसरा है। किसी किताब की इससे बेहतर आलोचना- नामवर जी माफ करेंगे- मैंने अब तक नहीं पढ़ी है।

हमीद हारून का यों भी ममनून रहता। उन्होंने मुझे कराची घुमाया, अपनी मां से मिलवाया, निजी संग्रह के बेशकीमती चित्र- खासकर सूजा का काम- दिखाया, 'डेथ इन वेनिस' और 'स्नो फॉलिंग ऑन सीडार्स' जैसी फिल्में खरीदवाईं। उनके 'डॉन'- जो अखबार ही नहीं, एक संस्था है- के सहयोगी पाकिस्तान में हर शहर-कस्बे में मेरे सत्कार को तत्पर रहे।

मगर हमीद ने मुझे निहाल किया फैज अहमद फैज की आवाज में अजीम शायर की चालीस रचनाओं की रेकार्डिंग देकर। गजलें, नज्में, कतआत, दुआ और एक तराना। जैसे इतना काफी न हो, उस्ताद बरकत अली खां से लेकर नवोदित हदीका कियानी तक की गायी फैज की तीस रचनाओं की तीन रेकार्डिंग और।

फैज की आवाज में उनकी शायरी की रेकार्डिंग हमीद हारून को कहां हाथ लगी? घर में ही। हमीद की बुआ डॉ. शौकत हारून से फैज का प्रेम था। फैज १९६४ में कराची आ गए थे। वे यहां हमीद के दादा के नाम पर स्थापित सर अब्दुल्ला हारून कॉलेज के प्रिंसिपल थे और हारून यतीमखाने का काम-काज भी देखते थे। यहां वे १९७२ तक रहे। घर और समूह से फैज के इस जुड़ाव को 'डॉन' ने इन रेकार्डिंग की सीडी तैयार करवा कर अनूठी श्रद्धांजलि दी है। संकलन में गाई गई सभी रचनाओं को उर्दू, उनके रोमन लिप्यांतर और अंग्रेजी अनुवाद के साथ एक निहायत खूबसूरत पुस्तिका के रूप में छपवाया भी गया है।

शायरी को शायर की अपनी आवाज में सुनना रस का अनुभव ही नहीं है, वह कहे गए के मर्म तक पहुंचने का भरोसेमंद ज़ीना है।

इसलिए अपने में यह एक खास अहसास नहीं, खुशकिस्मती भी है। कवि को आमने-सामने सुन सकें तो कहना ही क्या। वरना टेप पर सुनना भी कोई मामूली बात तो नहीं!

हारून हवेली में डॉ. शौकत को- जिनके नाम पर अब कराची का सरकारी अस्पताल है- फैज अपनी रचनाएं सुनाते थे। कुछ गजलें फैज ने डॉ. शौकत को लेकर लिखी हैं, ऐसा माना जाता है। वे डाक्टर को 'मसीहा' कहकर पुकारते थे। अरशद महमूद के मुताबिक 'गुलों में रंग भरे बादे-नौबहार चले' डॉ. शौकत के लिए लिखी गजल है। अगस्त १९६८ में जब शौकत चल बसीं और रावलपिंडी में होटल फ्लैशमेन्स में फैज को यह खबर दी गई तो उन्होंने कमरा भीतर से बंद कर लिया। वे तभी बाहर निकले जब डॉ. शौकत पर एक मर्सिया लिख सके: चांद निकले किसी जानिब तेरी जेबाई का, रंग बदले किसी सूरत शबे-तनहाई का। अरशद कहते हैं कि उर्दू में यह सबसे मार्मिक मर्सियों में एक है। इस मर्सिये को पढ़ते वक्त बरबस मुझे गालिब का अपने दत्तक पुत्र की मृत्यु पर लिखा मर्सिया भी याद हो आया।

डॉ. शौकत हारून के घर में भले मैं इस प्रसंग में कोई बात छेड़ने का साहस नहीं जुटा पाया, लेकिम हमीद हारून ने घर की जो रेकार्डिंग दीं, उसमें फैज को अपनी रचनाएं पढ़ते हुए सुनना मेरे लिए उनकी दुनिया में जैसे फिर से दाखिल होने का अनुभव था। मानो किसी गुफा की देहरी पर वे खुद आपको लिवा रहे हों; और फिर धीरे-धीरे अपनी आवाज की लालटेन से हर इबारत को इतना रोशन करें कि आगे आपको भीतर और बाहर दोनों आंखों से आप दिखाई देने लगे।

जाने किसने कब कहा था कि फैज लिखते अच्छा थे, पर बुरा पढ़ते थे। मुझे यह रेकार्डिंग सुनते हुए ऐसा नहीं लगा। यह जरूर है कि वे- इक्की-दुक्की कविता छोड़ कर- बहुत चाव से नहीं पढ़ते। मगर इसीलिए मजमे वाली नाटकीयता उनसे कोसों दूर रहती है। वे अपनी कविता सुनाते नहीं गुनगुनाते, बारहा बुदबुदाते प्रतीत होते हैं। अनमने, बेतकल्लुफ। बताते हैं, सिगरेट- जो वे एक पर दूसरी पीते थे- सुलगाने के लिए अच्छे-खासे मिसरे को बीच में छोड़ देते थे। जैसे हमारे बीकानेर की अल्लाहजिलाई बाई करती थीं: मांड में कोई सुर अचानक आसमान पर पहुंचा कर वहीं टांक दिया; कभी जाकर वापस उतार लातीं, वरना अगला बंद शुरू।

कराची में पता चला कि 'लहू का सुराग' फैज की इसी शहर पर लिखी गई नज्म है। १९६५ में अयूब खान के राज में जब मुजाहिर-पठान विवाद चरम पर था, फैज ने सांप्रदायिक हिंसा में मारे गए लोगों को लेकर यह नज्म लिखी थी।

यह भी बताया गया कि महात्मा गांधी की शवयात्रा में शामिल होने के लिए फैज लाहौर से दिल्ली आए थे। इस बात का जिक्र फरीदा सईद ने लंदन के एक अखबार के हवाले से फैज की गजलों के साथ जारी पुस्तिका में छपे एक लेख में भी किया है।

जहां तक निजी पसंद का मामला है, 'फिराक' मुझे फैज से ज्यादा रास आते हैं। उनके काव्य का फलक व्यापक है और कहन में बारीकी है। उनमें गहराई बहुत है। इसलिए ऊंचाई भी। फैज के बयान की खूबी सरलता और सहजता है। उनके दिल के करीब पंजाबी थी। अपनी पत्नी एलिस को १९५२ में एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि ''सोचता हूं पंजाबी में लिखना शुरू करूं और देखूं कि मादरी जुबान में क्या बनता है। उर्दू इतनी अलंकृत जुबान है कि मुझे परेशान करती है।'' इस ऊहापोह का ही नतीजा रहा होगा कि फैज की भाषा में सजावट नहीं है। हालांकि उन्होंने पंजाबी में कम, ज्यादातर उर्दू में ही लिखा। शास्त्रीय संगीत की उन्हें गहरी समझ थी। लय और ताल का संयम उनकी नज्मों में भी साफ जाहिर होता है। लिखे हुए शब्दों को उनके मुख से सुन कर इस बात की और सुखद अनुभूति होती है। जैसे वे सीधे दिल से निकल कर आते हों। उनके अनुभव की आंच आपको महसूस होती है। वरना बशीर बद्र जैसे ढेरों शायर आज चाहे जितनी वाहवाही लूटते हों, ओढ़े हुए अनुभवों का हुनर दिल में नहीं उतरता।

फैज में, पाब्लो नेरूदा की तरह, रूमानी और बगावत की शायरी का दिलचस्प मेल है। मुझे उनकी रूमानी शायरी की गहराई ज्यादा छूती है। लेकिन पाकिस्तान जाकर- जहां फौज के साए में अभी भी वही घुटन है- फैज के क्रांतिकारी तेवर की रचनाओं का तंज अपनी हकीकत में सामने आया। तकलीफ और उसका बयान दूर से शायद उतना नहीं समझ पड़ता।

फैज को अपने वक्त में जितने गायकों ने गाया, किसी दूसरे शायर को शायद ही गाया होगा। अच्छी गजल गायकी शब्दों की महज मधुर अदायगी नहीं होती, वह अर्थों की नई परतें खोलती है। वह हमें फिर से कविता के पाठ की तरफ भी ले जाती है। इस मायने में अच्छा फनकार- और दूसरी तरफ सुनने वाले- काव्य का नए सिरे से आविष्कार करते हैं। मसलन मेंहदी हसन की गाई मौलाना हाली की गजल 'आगे बढ़े ना किस्सा-ए-इश्के-बुतां से हम' या इकबाल बानो की आवाज में फैज की दो नज्में 'हम देखेंगे' और 'दश्ते तनहाई में' सुनें। मेंहदी हसन में लहजे की कशिश और इकबाल बानो में स्वरों का खिंचाव और तनाव एक-एक शब्द में कई-कई छवियां देखता और दिखाता है। कमजोर उदाहरण देखना हो तो लता की गाई गालिब की गजलें लें। उनके भाई हृदयनाथ ने जैसे उन्हें भजनों की शक्ल में तैयार किया है।

कराची में फैज के कलाम की गायकी के संकलन अरशद महमूद की देखरेख में तैयार हुए हैं। उन्हें संगीत की गहरी समझ है। वे फैज के करीब रहे हैं। उन्होंने यह सिलसिला शास्त्रीय गायकों उस्ताद बरकत अली खां (दोनों जहान तेरी मुहब्बत में हार कर) और उस्ताद अमानत अली खां (तेरी उम्मीद तेरा इंतजार जब से है, न शब को दिन से शिकायत न दिन को शब से है) से शुरू किया है। फिर मलिका-ए-तरन्नुम नूरजहां और मलका पुखराज हैं। फैज की अमर नज्म 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग' को सबसे पहले नूरजहां ने गाया था। फैज उसे सुन कर इतने मुग्ध हुए कि नज्म उन्होंने नूरजहां के नाम कर दी। अरशद ने नई के साथ नूरजहां की वह पहली बगैर साज

वाली रेकार्डिंग भी शरीक की है। उसमें 'वाह' लगता है फैज की तरफ से है। मल्लिका पुखराज की गाई दो गजलें (कब ठहरेगा दर्दे-दिल और कब तक दिल की खैर मनाएं) इस संकलन की खूबी हैं। फरीदा खानम भी इसमें हैं।

गजल गायकी के शहंशाह कहे जाने वाले मेंहदी हसन ने १९५९ में लाहौर की एक महफिल में 'गुलों में रंग भरे' गजल पहलेपहल गाई थी। वह रेकार्डिंग मुझे बरसों बाद फिर सुनने को मिली है। यह गजल बाद में मेंहदी हसन की वैसी ही पहचान बनी जैसे इकबाल बानो की 'हम देखेंगे' नज्म। 'आए कुछ अब्र' गजल मैंने मेंहदी हसन से रूबरू भी सुनी है और उनकी कई कैसेट्स में वह मिलती है। मगर अरशद के संयोजन में एक नया शेर शामिल है- 'इस तरह अपनी खामुशी गूंजी, गोया हर सिम्त से जवाब आए'। 'अपनी' को मेंहदी हसन ने एक नहीं कई रंगों में रंगा है। हालांकि गजल के तीन शेर पता नहीं क्यों अभी भी छूटे रहते हैं।

नय्यारा नूर और नई गायिकाएं- टीना सानी, नजम शिराज और हदीका कियानी भी अरशद के संकलनों में हैं। नए स्वर निराश करते हैं। नय्यारा भी फिल्मी भावुकता से गाती हैं। 'खून के धब्बे धुलेंगे कितनी बरसातों के बाद' ऐसे गाया है मानो खून के धब्बों की नहीं, बरसात की बूंदों की बात हो रही हो!

फैज को कराची की इस शानदार यादगार में दो गैर-उर्दू कलाकार भी हैं। बांग्लादेश की फिरदौसी बेगम ने दो गजलों में 'सब कत्ल होकर तेरे मुकाबिल से आए हैं' को निराले अंदाज में गाया है। लेकिन मूलत: सिंधी मगर उर्दू में पूरा दखल रखने वाली आबिदा परवीन अब अपने को दुहराने लगी हैं। बीस साल पहले मालविका सिंह की इंडिया मैगजीन ने उनका एक कैसेट निकाला था। उसमें पहली गजल आबिदा ने मीर हसन की 'हम न नकहत हैं न गुल हैं जो महकते जावें' गाई थी। उसके बाद उनके दर्जनों कैसेट-सीडी भारत में निकले हैं। न जाने क्यों न वह गजल उन्होंने दुबारा गाई, न उस ऊंचाई को छुआ। 'रक्से-बिस्मिल' मुजफ्फर अली के संयोजन की वजह से जरूर कुछ अलग काम हुआ था। हां, मस्त कलंदर गाने में वे रूना लैला से लेकर रेशमा तक सबको आज भी पीछे छोड़ती हैं।

बेहतर होता अरशद महमूद अपनी इस मेहनत और सूझ के काम में बेगम अख्तर का नाम भी शरीक करते। गजल गायकी का दौर तीस के दशक में मुख्तार बेगम और बेगम अख्तर से शुरू हुआ माना जाता है। हालांकि मेरे दोस्त प्रमोद द्विवेदी का कहना है कि कमला झरिया उनसे कुछ पहले गजल गाती थीं। उस दौर में ख्याल और ठुमरी के कई फनकार गजल गायकी में सुर आजमाने लगे थे। बहरहाल, झरिया या मुख्तार बेगम ने फैज को कभी गाया हो इसकी जानकारी मुझे नहीं है। शायद तब तक फैज जाने नहीं गए थे। सहगल भी पहले चल बसे। बेगम अख्तर ने जरूर- मेंहदी हसन से भी पहले- फैज की एक गजल 'शामे फिराक अब न पूछ' गाई थी। जनवरी, १९५७ में एक व्यवसायी वल्लभदास खटऊ की घरू महफिल में उनकी गाई एक और गजल 'दोनों जहान तेरी मुहब्बत में हार के' तीन साल पहले सामने आई है। फैज की तीसरी गजल बेगम अख्तर ने दूरदर्शन के लिए गाई थी 'आए कुछ अब्र कुछ शराब आए'। दूरदर्शन ने इसकी ऑडियो ही नहीं वीडियो सीडी भी अपने आर्क्वाइज से निकाल कर जारी की है।

जो हो, सिर्फ फैज के नाम पर नहीं, गजल गायकी में मेरे सामने मेंहदी हसन के बाद इकबाल बानो से बड़ा कोई नाम नहीं है। वह महज आनंद का स्वर नहीं है। वक्त-जरूरत वह विचलित भी करता है। असल परख तो विद्वान कद्रदां करेंगे, या वक्त; लेकिन जिस किसी ने जनरल जियाउल हक के जुल्म भरे दौर में लाहौर के उस जलसे की रेकार्डिंग सुनी हो जिसमें इकबाल ने 'हम देखेंगे' गाया था, वह जिंदगी भर उसे शायद भूल नहीं सकता। तब तक भुट्टो को फांसी दी जा चुकी थी। फैज भुट्टो के साथ माने जाते थे इसलिए बेरुत चले गए थे। प्रो. इसरार ने उनकी नज्म कंपोज की। इकबाल बानो ने मंद्र पर जब 'जुल्मो-सितम के कोहेगरां' से गजल का साज उठाया, वह तारसप्तक में 'सब तख्त गिराए जाएंगे-सब ताज उछाले जाएंगे' तक पहुंचते हुए जैसे किसी विस्फोट में तब्दील हो गया। पचास हजार लोगों के हुजूम ने बार-बार उन्हें गवाया और नारों और तालियों की गड़गड़ाहट में ऐसा आलम बना गोया आसमान फटने को हो। कविता के लिहाज से हो सकता है नज्म महान न हो; वक्त की नजाकत बड़ी थी; लेकिन कल्पना करें किसी और के गले से कविता क्या वह असर दिखा सकती थी?

मैं आज भी जब बानो की आवाज में 'दोनों जहां' सुनता हूं तो 'हार के' का खिंचाव और 'शामे फिराक' में (गम) 'जगा लिया' की अदायगी देखता हूं तो कहने को मन करता है कि वे गजल गायकी की सुल्ताना हैं।

मजे की बात है कि अरशद महमूद ने 'हम देखेंगे' को अपने संकलन में लिया है, धुन भी प्रो. इसरार की है, पर गवाया किन्हीं नजम शिराज से है। शायद आज के माहौल में उतने जोश की जरूरत नहीं!

कराची में मेंहदी हसन से मिलने का मन था। मगर वे लकवे के इलाज के सिलसिले में बाहर थे। बरसों पहले चंडीगढ़ में उनसे भेंट हुई थी। पीजीआई के प्रेक्षागृह में क्या समां था। मेंहदी हसन ने मंच पर कदम रखा और सारा हॉल अपने कदमों पर था। खैरमखदम में बज रही तालियां थमने का नाम नहीं ले रही थीं और न लोग बैठने का। किसी कलाकार के लिए ऐसा जोश भरा स्वागत उसके बाद देखा हो, याद नहीं पड़ता। उस शाम की एक खूबी और थी। मेंहदी हसन ने जितनी गजलें गाईं, हर एक से पहले गजल के राग की सरगम भी सुनाई। उनका बेटा कामरान भी साथ आया था। राज्य के मुख्य सचिव के घर उनके सम्मान में हुई दावत में मैंने मेंहदी हसन की खुद्दारी देखी। ऐलान हुआ कि वे कुछ सुनाएंगे। वे भड़क गए। लोग खाएं और हम गाएं! कोई भांड हैं? दावत में ज्यादातर आईएएस अफसर थे। एक ने- जो खुद शायर थे- माफी मांग कर उनका गुस्सा ठंडा करने की कोशिश की। मेंहदी हसन राजस्थान में झुंझनूं जिले के रहने वाले हैं। उस रोज वे मेरी पत्नी से बोले थे, राजस्थान की हैं तो राजस्थानी क्यों नहीं बोलतीं। मैं तो पाकिस्तान में भी घर में आज तक बोलता हूं।

और हम लोग अपनी-अपनी बोली में देर तक बतियाते रहे। संगीत सुनने का मुझे तो महज शौक है; पत्नी ने उसकी पढ़ाई की है, उस्ताद सईदुद्दीन डागर की शिष्या हैं। उन्होंने कराची जाते वक्त चंडीगढ़ की बैठक के फोटो निकाल कर दिए थे। उन्हें वापस ले आया हूं। छोड़ आ सकता था। डाक से भी भेज सकता हूं। पर इसमें बात बनेगी नहीं। मन 'खान साहब' से मिलने का है। अगली बार सही। इंशाअल्लाह!